International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493
Received: 02-01-2025, Accepted: 01-02-2025, Published: 17-02-2025
Volume 7, Issue 1, 2025, Page No. 5-7

गोरखनाथ कृत गोरक्षशतक में वर्णित शरीरगत वायु व मुख्य वायु की हठयोग क्रिया में भूमिका

सीमा सिंह
हिन्दी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तप्रदेश, भारत

सारांश
शरीर में वायु का होना जीवन शक्ति का प्रतीक है वायु का शरीर से निष्क्रमण ही मरण है। अतः वायु का निरोध करना चाहिए।

यावद्वायुः स्थितो देहो तावज्जीवनमुच्यते।
मरणं तस्य निष्क्रान्तिः ततो वायु निरोधयेत्।।

वायु श्वास और चेतना के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध की गूढ़ समझ का सुझाव देता है। मानव शरीर में 10 वायु कार्यशील रहते हैं और इसे श्वास प्रक्रिया (प्राणायाम) द्वारा जाना जाता है हठयोग क्रिया द्वारा वायु के कार्यों को नियन्त्रित किया जाता है जिससे वायु के सभी आन्तरिक कार्य आत्मा को भौतिक आसक्ति से शुद्ध करने में सहायक सिद्ध हो। मानव इन्द्रियाँ आँख, नाक, कान, त्वचा, जिह्वा का कार्य क्रमशः देखना, सूँघना, सुनना, स्वाद है ये सभी इन्द्रियां मिलकर आत्मा से बाहर के कार्यों में लग जाती हैं। वायु के रहस्य को अच्छी तरह समझ लेने पर मानव लम्बे समय तक जीवित रहने का रहस्य जान लेता है यही वायु का मुख्य उद्देश्य है। वायु ही शरीर के भीतर अमृत या विष में बदलने की अद्भुत क्षमता रखता है।

मूल शब्दः वायु, निश्क्रमण, निरोध, मरण, भवास, चेतना, प्राणायाम, हठयोग क्रिया, नियन्त्रित, आन्तरिक, आत्मा, आसक्ति, इन्द्रियाँ, जिह्वा, जीवित, भारीर, रहस्य, अमृत, विश आदि।

वायु सिर से लेकर नाभि तक ऊर्जा का प्रवाह है जो भौतिक शरीर का प्रामाणिक केन्द्र है। वायु हमारे आन्तरिक संसार और बाहरी (प्रकृति) संसार के बीच सम्बन्धों को निर्देशित करता है। छान्दोग्य उपनिषद में वायु को स्वर्गीय दुनिया के द्वारपाल के रूप में सन्दर्भित किया गया है। हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है–

चले वाते चलं चित्तं निश्चले निश्चलं भवेत्।
योगी स्थाणुत्वमाप्नोति तात वायुं निरोधयेत्।।

अर्थात् वायु के चलायमान होने पर चित्त भी चलायमान हो जाता है और प्राणों के निश्चल होने पर मन भी स्वतः निश्चल हो जाता है और योगी स्थाणु हो जाता है अतः योगी को श्वासों पर नियन्त्रण करना चाहिए। महायोगी गोरखनाथ जी ने दश वायु का वर्णन है– प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कृकर, देवदत्त, कूर्म और धनंजय। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान ये पाँच प्रधान वायु अथवा पंच प्राण हैं। नागआदि उपवायु या गौण वायु है।

उपवायु

1. नाग–इसका मुख्य स्थान कण्ठ व मुख है, डकार, हिचकी आदि कर्म इसी के द्वारा होता है।
2. कूर्म–इसका स्थान मुख्य रूप से नेत्र गोलक है। यह नेत्र गोलकों में रहता हुआ उन्हें दाए–बाँए, ऊपर–नीचे घुमाने की तथा पलकों को खोलने बन्द करने की क्रिया करता है। आँसू भी इसी के सहयोग से निकलते हैं।
3. कृकर यह मुख से हृदय तक के स्थान में रहता है तथा जंथाई, भूख, प्यास आदि को उत्पन्न करने का कार्य करता है।
4. देवदत्त–यह नासिका से कण्ठ तक के स्थान में रहता है। इसका कार्य छींक, आलस्य, निद्रा तन्द्रा आदि को लाने का है।
5. धनंजय– यह सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। इसका कार्य शरीर के अवयवों को खींचे रखना, मांस पेशियों को सुन्दर बनाना आदि मृत्यु शरीर में भी चार घण्टे तक रहता है।

महायोगी गोरखनाथ ने गोरक्षशतक में 72 हजार नाड़ियों की बात की है। उसमें 72 नाड़िया, प्रमुख उसमें भी इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना का विस्तार से वर्णन किया गया है। इन्हीं नाड़ियों से दस वायु भ्रमण कर प्राण का संचार करती रहती है।''

एते सर्वाणु नाड़ीषु भ्रमन्ते जीवरूपिणः।

जब हम श्वास लेते हैं तो भीतर प्रवेश कर रही वायु पाँच भागों में विभक्त हो जाती है अथवा शरीर के भीतर पाँच जगह स्थिर और स्थित हो जाती हैं लेकिन स्थिर और स्थित रहकर भी गतिशील रहती है। पाँच मुख्य वायु–

1. प्राण वायु

यह वायु हृदय, फेफड़े के क्षेत्र में अधिक सक्रिय होती है। यह आन्तरिक प्रेरक ऊर्जा है यही वायु सुनिश्चित करती है कि हृदय धड़कता रहे। प्राण को एक सार्वभौमिक ऊर्जा माना जाता है जो शरीर में और उसके चारों ओर धाराओं में बहती है प्राण केवल श्वास या हमारे अन्दर की यात्रा के प्रवेशद्वार से कही अधिक है प्राण एक परिवर्तनकाारी महत्त्वपूर्ण जीवन शक्ति है जो हमारे शरीर के प्रत्येक पहलू को प्रभावित करती है। सिर से लेकर नाभि तक ऊर्जा की गति जो भौतिक शरीर का प्रामाणिक केन्द्र है। प्राण वायु स्वयं को सन्तुलित करती है क्योंकि ऊर्जा अन्दर और बाहर दोनों ओर जाती है। उपनिषदों में प्राण को 'आत्मा की छाया' कहा गया है इसलिए योगी प्राणायाम से अपने प्राणों को शुद्ध करता है। प्राण का सीधे आत्मा से बहना और प्राण का चित्त से बहना दो अलग–अलग प्रकार हैं जब योगी का चित्त निर्मल हो जाता है तब उसके प्राण सीधे आत्मा से बहते हैं लेकिन सांसारिक व्यक्ति के प्राण चित्त में पड़े स्वभाव–संस्कार से होते हुए उन वासनाओं को अपने साथ लेकर बहते हैं। महाभारत में 'प्राणवायु को बिजली के समान एक शक्ति के रूप में वर्णित किया गया है।

2. अपान वायु

अपान वायु नाभि से नीचे मूलाधार चक्र तक ऊर्जा ले जाती है। इसे दूर जाने वाली वायु भी कहा जाता है, शरीर में ऊर्जा का नीचे की ओर और बाहर की ओर प्रवाह है। अपनयति प्रकर्षेण मलं निस्सारयति अपकर्षति च शक्ति इति अपानः। अर्थात् जो मलों को बाहर फेकने की शक्ति में सम्पन्न है वह अपान है। मल, मूत्र, स्वेद, कफ, रज वीर्य आदि का विसर्जन, भ्रूण का प्रसव आदि बाहर फेकने वाली क्रियाएं इसी अपान प्राण के बल से सम्पन्न होती हैं। अपान वायु पृथ्वी तत्व जुड़ी है और शरीर के निचले पेट और श्रोणि क्षेत्र में स्थित है। अपान वायु एक अवरोधी ऊर्जा है, जिसका उपयोग हठयोग में कुण्डलिनी शक्ति को जगाने के लिए किया जाता है।

3. समान वायु

समान वायु का अर्थ है 'संतुलन वायु' और इसका प्रवाह शरीर की परिधि से केन्द्र की ओर जाता है। समान वायु पेट में स्थित है और इसकी ऊर्जा नाभि में केन्द्रित है। यह प्राण प्राण वायु और अपान वायु के बीच सन्तुलन लाता है। समान वायु का मुख्य कार्य प्राण को उसके सभी रूपों को आत्मसात करना है समान वायु पाचनतन्त्र (यकृत, आंत्र, अग्नाशय, पेट और स्रावित रस) को सक्रिय और नियन्त्रित करती है। समान वायु हमें विवेक, मानसिक एकाग्रता और सन्तुलन प्रदान करती है। समानवायु अग्नि तत्व से जुड़ी है जो परिवर्तन और पाचन का प्रतिनिधित्व करती है यह आन्तरिक ऊर्जा से जुड़ी है।

4. उदान वायु

उदान शबद संस्कृत का शब्द है जिसका अर्थ है 'ऊपर की ओर बढ़ना'। उदान वायु शरीर में ऊर्जा को ऊपर की ओर ले जाने के लिए जिम्मेदार है। यह गले, छाती, सिर के क्षेत्रों से सम्बन्धित है, उदान वायु मृत्यु के पश्चात् आत्मा को सूक्ष्म और कारण तल पर ले जाती है। यह अन्तरिक्ष के तत्व से जुड़ी है, जो विस्तार और प्रकाश का प्रतिनिधित्व करता है। यह प्राण वायु वाणी, ध्वनि और भावनाओं की अभिव्यक्ति के साथ–साथ शरीर को ऊपर की ओर ले जाने वाली तथा आनन्द, उत्साह और प्रेरणा का अनुभव करने की क्षमता, आध्यात्मिक विकास और परिवर्तन की क्षमता के लिए उत्तरदायी है। यह मुख्य रूप से हृदय और सिर के बीच के क्षेत्र में सक्रिय रहता है जो मस्तिष्क में गहरे ऊर्जा केन्द्रों में प्राण लाता है। इसके बिना विचार और बाहरी दुनिया के बारे में जागरूकता असम्भव है। सुषुम्ना नाड़ी से होकर गुजरने वाली वायु के उदान कुण्डलिनी शक्ति के उत्थान से जुड़ी है उदान वायु गर्दन के ऊपर के क्षेत्र को नियन्त्रित करती है।

5. व्यान वायु

'बाहर की ओर बहने वाली वायु' है। यह केन्द्र से परिधि तक जाती है, पूरे शरीर में फैलती है रक्त संचार का कारण बनती है। इसे 'सर्वव्यापी प्राण' भी कहा जाता है। संस्कृत में व्यान शब्द का अर्थ है 'विस्तार करना' या 'फैलना'। व्यान वायु शरीर की गतिविधियों को विनियमित और नियन्त्रित करती है। यह चार अन्य वायुओं को जोड़ती है और समन्वय स्थापित करती है। व्यान मन को अनंत में फैलाता है, जिससे ब्रह्मांडीय मन के लिए खुलापन मिलता है। यह 72000 हजार नाड़ियों के माध्यम से ऊर्जा की सामान्य गति को भी नियन्त्रित करता है, उन्हें शुद्ध करता है। यह जल तत्व से जुड़ा है। व्यान के प्रबुद्ध होने पर ऋतम्भरा प्रज्ञा मिलती है, ऋतम्भरा प्रज्ञा उस उच्च विचारधारा को कहते हैं जो जीव को आत्म कल्याण की ओर ले जाती है। आत्मसाक्षात्कार, ईश्वर दर्शन, दिव्य दृष्टि, समाधि केन्द्र व्यान है, सत्कर्म, शुभ संकल्प सद्वृत्ति आदि दैवी गुण कर्म स्वभावों का प्रकाशन व्यान द्वारा ही होता है।

पाँच प्राणवायु का लेखाचित्र

पाँच वायु की मुख्य क्रियाओं एवं गुणों को संक्षेप में प्रस्तुत करने और आसानी से समझने के लिए नीचे लेखाचित्र प्रस्तुत किया गया है।

वायु	कार्य	जगह	आन्दोलन	चक्र	तत्व	अभिव्यक्ति
प्राण	क्रिस्टलीकरण	हृदय एवं फेफड़े	चारों ओर	अनाहत	वायु	चक्रीय
अपान	उन्मूलन	श्रोणि	नीचे	मूलाधाार	धरती	स्थिरता
व्यान	प्रसार	पूरे भारीर में	बाहर	स्वाधिश्ठान	जल	संरेखण
उदान	चयापचय	गला	ऊपर की ओर	विशुद्धि/आज्ञा	आकाश	मौखिक
समान	आत्मसात	नाभि	आन्तरिक	मणिपुर	अग्नि	आन्तरिक

हठयोग क्रिया में पांच महाप्राण वायु और पांच लघु प्राण वायु दोनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। पंच महाप्राण वायु को 'ओजस' और लघु प्राण वायु को 'रेवस' कहते ही दोनों ही प्राण एक–दूसरे के पूरक व सहायक हैं। गोरक्षशतक में महायोगी गोरखनाथ जी वर्णन करते हुए कहते हैं जिस तरह भुजदण्ड द्वारा ताडित होकर गेंद स्वयं उछलता है उसी तरह प्राण और अपान द्वारा (निरन्तर) आक्षिप्त (आकृष्ट) जीव (क्षणमात्र भी) स्थित नहीं हो पाता है। जीवात्मा प्राण और अपान के वशीभूत होकर इड़ा और पिंगला क्रमशः बायें और दायें नासारन्ध्रों में ऊपर–नीचे चढ़ता–उतरता रहता है। अस्थिरता और चंचल होने के कारण वह दिख भी नहीं पड़ता है।

अपानः कर्षति प्राण प्राणोऽपान च कर्षति।
ऊर्ध्वाधः संस्थितावेतौ संयोजयति योगवित्।।

डोरी में बंधा बाजपक्षी जिस तरह ऊपर उड़ने लगता है और डोरी खींचने पर वापसस आ जाता है ठीक उसी प्रकार (सत, रज, तम) तीनों गुणों से (वासना और अविद्या में) आबद्ध जीवात्मा प्राण और अपान को अपनी–अपनी ओर खींचते हैं, इस तरह नीचे–ऊपर खिंचते प्राण–अपान, दोनों को योगी पुरुष ही संयोजित (समरस) करते हैं (प्राण–अपान का यह संयोग ही सूर्य और चन्द्र का सामरस्य है)।

हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत् पुनः।
हंसहसेत्यमुं मन्त्र जीवा जपति सर्वदा।।

यह जीव (प्राण के रूप में/श्वास रूप में) हकार की ध्वनि से बाहर जाता है और (अपान के रूप में) सकार की ध्वनि से भीतर आता है। इस तरह वह सदा हंस–हंस मंत्र का जाप करता रहता है। इस तरह जीव एक दिन में 21 हजार 6 सौ हंस मंत्र का जप करता है। यही अजपागायत्री है, इस गायत्री के संकल्प मात्र से ही समस्त पापों से छुटकारा हो जाता है। इस गायत्री के समान न तो कोई विद्या है न जय है और न भूत–भविष्य में कोई ज्ञान ही है। कुण्डलिनी में उत्पन्न हुई यह गायत्री प्राणधारिणी प्राणविद्या महाविद्या है, इसको जो जान लेता है वही योगी पुरुष है।

प्राणविद्या महाविद्या यस्तां वेति स योगवित्।

इन दस प्राणों/वायु को सुषुप्त दशा से जागृत करने उसमें उत्पन्न हुयी कुप्रवृत्तियों का निवारण करने, प्राण शक्ति पर परिपूर्ण अधिकार एवं आत्मिक जीवन को सुसम्पन्न बनाने के लिए 'प्राण विद्या' को जानना आवश्यक है। जो इस विद्या को जान लेता है उसको प्राण सम्बन्धी न्यूनतम एवं विकृति के कारण उत्पन्न होने वाली कठिनाइयाँ दुःख नहीं देती।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जो तत्व शरीर में गति या उत्साह उत्पन्न करे वह वायु या वात कहलाता है। आयुर्वेद में त्रिदोष–वात, पित्त, कफ ब्रह्माण्ड के तीन तत्वों पर आधारित है उसमें वायु दोष सबसे प्रमुख दोष माना गया है। वात दोष को मुख्यतः 'दोषों का राजा' कहा जाता है क्योंकि यह शरीर की अधिक जीवन शक्ति को नियन्त्रित करता है और पित्त, कफ को गति देता है। इस दोष का निर्माण वायु और आकाश तत्व के मेल से होता है। शरीर में होने वाली उन सभी गतिविधियों जिसमें गतिशीलता होती है वह वायु के कारण होती है। जब वायु गति अधिक या अन्यत्र होती है, तो वात दोष में अंसन्तुलन पैदा होती है। वायु ही सभी संवेदी कार्यों और शरीर, मन की गतिविधियों को नियन्त्रित व प्रभावित करता है। शरीरगत विभिन्न वायु जैसे प्राण वायु इन्द्रियों पर नियन्त्रण, व्यान वायु शारीरिक क्रियाओं पर नियन्त्रण उदानवायु बौद्धिक क्षमताओं को नियन्त्रण करता है। समान वायु पाचन प्रक्रियाओं को नियन्त्रित करना, अपान वायु सभी स्रावों को नियन्त्रित करता है। हठयोगी सभी वायु को सन्तुलित कर हठयोग क्रिया को पूर्णता प्राप्त कर राजयोग मार्ग की ओर अग्रसर होता है। इसी प्राण विद्या को ही हठयोग कहते हैं। हठयोग के अन्तर्गत प्राण परिपाक के लिए 1. बन्ध, 2. मुद्रा, 3. प्राणायाम क्रिया को बताया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. हठयोग प्रदीपिका, द्वितीय उपदेश–3, स्वात्मारामयोगीन्द्र, मुम्बई, संस्करण 2009, पृ0 46
2. छान्दोग्यपनिषद्, पं0 राजाराम शर्मा (संस्कृत–टीका) लाहौर, 7:21
3. हठयोगप्रदीपिका द्वितीय उपदेश–2, स्वात्मारामयोगीन्द्र, मुम्बई, संवत् 2009, संस्करण, पृ0 46
4. गोरक्षशतक–37, सम्पादक रामलाल श्रीवास्तव, गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर, संस्करण–संवत् 2038, पृ0 8
5. प्रश्नोपनिषद प्रश्न–3, सानुवाद, गीताप्रेस गोरखपुर, 1992, पृ0 37
6. महाभारत अध्याय–4, श्लोक–29, गीताप्रेस गोरखपुर
7. संस्कृत–हिन्दी शब्दकोश, वामन शिवराम आम्टे, अशोक प्रकाशन दिल्ली, संस्करण 2017, पृ0 194
8. गोरक्षशतक–41, सम्पादक टीकाकार रामलाल श्रीवास्तव, गोरखनाथ मन्दिर, गोरखपुर, संस्करण–संवत् 2038, पृ0 9
9. वही, 42, पृ0 9
10. वही, 46, पृ0 10